प्रसंगवश:

आलोक मेहता

सत्ता के लिए बहुरंगी तलवारों की धार

दिल्ली अभी दूर है लेकिन तलवारों को धार तेज की जा रही है। कोलकाता से चेन्नई तक, श्रीनगर से मुंबई और हैदराबाद, बेंगलुरु तक। लखनऊ, पटना, रांची, चंडीगढ़ में भी दिल्ली के सिंहासन को अपनी तलवारों की शरण में लाने की तैयारियां हो रही हैं। राजनीतिक भविष्य दीवार पर नहीं लिखा है। तीर हवा में चल रहे हैं। राजनीतिक पंडित ही नहीं, चतुर राजनेता भी आशंकाओं, संभावनाओं के आधार पर समीकरण बना-बिगाड़ रहे हैं। केंद्र में सत्ता का सिंहासन पाने के लिए 'पारंपरिक कुंडली' के अनुसार 2014 में असली राजनीतिक संघर्ष होना है लेकिन अधिकांश मानते हैं कि 2013 तक 'चक्रव्यूह' बन चुका होगा। हर दिशा में राजनीतिक गोला-बारूद बिछ रहा है। दशकों से शक्तिसंपन्न मानी जाने वाली राष्ट्रीय पार्टियों – कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के निरंतर कमजोर होने को धारणा लिए क्षेत्रीय क्षत्रप अपने किलों को अधिक मजबूत कर रहे हैं।

कांग्रेस और भाजपा के कमजोर होने वाले की धारणा लिए क्षेत्रीय क्षत्रप दिल्ली की गद्दी पर बैठने के सपने देख रहे हैं पर क्या यह देशहित में होगा?

जरा सोचकर देखिए – कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के सचमुच बहुत पिछड़ जाने पर दिल्ली में सत्ता के केंद्र का दृश्य कैसा होगा? जयललिता, मुलायम सिंह यादव, नवीन पटनायक, मायावती, ममता बनर्जी, नरेंद्र मोदी, महबूबा मुफ्ती, येदियुरप्पा या कुमारस्वामी देवेगौड़ा, प्रकाश सिंह बादल, जगन रेड्डी-चंद्रबाबू नायडू, नीतीश कुमार, शिबू सोरेन, लालू प्रसाद यादव, बाल ठाकरे, प्रफुल्ल कुमार महंत जैसे क्षेत्रीय अधिपति केंद्र में सरकार चला रहे होंगे तो किस राज्य को अधिक लाभ मिल रहा होगा? यही क्षत्रप फिलहाल अपने प्रदेश को केंद्र से समुचित न्याय – आर्थिक सहायता नहीं मिलने के मुद्दे पर आक्रोश व्यक्त करते रहते हैं। अधिकांश राज्य एक लाख करोड़ से दस लाख करोड़ रुपए के विशेष पैकेज की मांग करते हैं। पिछड़ा कहे जाने वाला बिहार हो अथवा संपन्नता की मूंछ लगाए हुए पंजाब – सबको केंद्र से अधिकाधिक हिस्सा चाहिए। जब स्वयं सत्ता में भागीदारी कर रहे होंगे तो आर्थिक पैकेज का बंटवारा कैसे होगा? खजाने का हिसाब-किताब तो अफसर और आर्थिक सलाहकार बनवा देंगे लेकिन प्रदेशों की तरह ठेकों से अरबों रुपयों की ऊपरी कमाई किस तरह खाई और बांटी जाएगी। भ्रष्टाचार उत्तर प्रदेश, हरियाणा या झारखंड तक सीमित नहीं है। जनता अभ्यस्त हो गई है इसलिए सुविधानुसार कभी सजा देती है तो कभी उदारतापूर्वक माफी दे देती है। राजा तो हाल में पकड़ में आ गए, चौटाला, जयललिता, बादल, लालू यादव, शिबू सोरेन जैसे नेता इस उम्र और पड़ाव पर क्या चाल-चरित्र बदल लेंगे? तमिलनाडु में एक साल राज करने पर एक दिन में प्रचार पर 50 करोड़ रुपए खर्च करने वाली देवी जयललिता केंद्र में सिंहासन सुख पाने पर क्या एक दिन में 250 करोड़ रुपए से कम का प्रचार करेंगी? यदि बाबा साहेब की कृपा से बहन मायावती को सिंहासन मिल गया तो देश के हर शहर में अरबों रुपयों की लागत से हाथियों के साथ कांशीराम और बहनजी की प्रतिमाओं वाले सैकड़ों पार्क नहीं बन जाएंगे? कार्टून की बात तो बहुत बड़ी है, पत्र-पत्रिका में फोटो छापने के लिए 'फीस' देकर दरबार से स्वीकृति अनिवार्य हो जाएगी। चारा, खाद, चीनी, कोयले से जुड़े कांड तो छोटे दिखने लगेंगे, क्योंकि परमाणु बिजलीघरों, लड़ाकू विमानों, सुपर कंप्यूटर के सौदों या बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खदानों-राजमार्गों के ठेके देने से गरीब दुखीजनों की पार्टियों के खजाने अधिक भर सकेंगे। इतनी मेहरबानी अवश्य होगी कि खजाने की यह रकम फटेहाल समर्थकों-कार्यकर्ताओं से इकट्ठी की हुई दिखाई जाएगी। वैसे पुराने राजा-जमींदार अपने पालतू जानवरों के नाम पर भी जमीन-संपत्ति रखते थे। बेनामी संपत्ति का खेल बीसवीं शताब्दी से पहले भी खेला जाता रहा है।

मतलब यह कि क्षेत्रीय हितों के नाम पर पिछले वर्षों के दौरान विभिन्न राज्यों में नई राजनीतिक शक्तियां आ गईं लेकिन वे केंद्र पर कब्जा करने के बाद कितनी जिम्मेदार और न्यायिक भूमिका निभा सकेंगी? सबसे दिलचस्प बात यह है कि कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी या कम्युनिस्ट पार्टियों ने भी गठबंधन की राजनीति के नाम पर भ्रष्ट तथा तानाशाही प्रवृत्ति वाले क्षेत्रीय नेताओं के समक्ष समर्पण किया हुआ है। भला आदर्शवादी क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टियां जयललिता-करुणानिधि, देवेगौड़ा, चंद्रबाबू नायडू तक के सामने नतमस्तक होने में संकोच नहीं करती हैं। मायावती, ओमप्रकाश चौटाला, शिबू सोरेन की पालकी उठाने में संघ के आदर्शों वाली भारतीय जनता पार्टी भी अग्रणी रही है।

इंदिरा-राजीव गांधी के बाद कांग्रेस पार्टी के नेता सत्ता की मजबूरियों के नाम पर विभिन्न प्रदेशों में समझौते करते रहे हैं। गनीमत यह है कि अब तक कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी ने किसी भी राज्य में सत्ता में भागीदारी नहीं की। समय के साथ क्षेत्रीय दलों के साथ समझौते करते रहने और अपनी ही पार्टी के क्षेत्रीय क्षत्रपों को मजबूत नहीं होने देने से राष्ट्रीय दलों की हालत खराब हुई है। वो मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, असम जैसे राज्यों में इन दलों की सरकारें हैं और फिलहाल यहां कोई बड़ा विकल्प नहीं है लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता के लिए इन राज्यों के बल पर बहुत कुछ नहीं हो सकता है।

इस राजनीतिक परिस्थिति का एक और पहलू भी है। क्षेत्रीय हितों के अलावा दलित, पिछड़ा, अल्पसंख्यक वोट समीकरण भी बहुत महत्वपूर्ण बन गया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, पंजाब, ओडिशा, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र जैसे राज्यों के इस जातीय समीकरण में लोकसभा की लगभग चार सौ सीटों का फैसला होगा। सवाल यह है कि क्षेत्रीय और जातीय समीकरण के बल पर केंद्र में सत्ता में आने वाली पार्टियां सही अर्थों में राष्ट्रीय स्तर पर जनता का कितना भला कर पाएंगी। अभी 2014 से पहले थोड़ा वक्त है। राष्ट्रीय राजनीतिक दल गहन आत्ममंथन कर नया एजेंडा तय कर सकते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व किसका हो, इस मुद्दे पर खींचातानी से पहले कांग्रेस या भारतीय जनता पार्टी को अपने घर-आंगन को साफ-सुथरा करके दीवारें मजबूत करनी होंगी। उनके पास विचारों, कार्यक्रमों, आदर्शों की विरासत है और युवा नेतृत्व के चेहरे भी लेकिन निचले स्तर पर संगठन को मजबूत किए बिना वे दिल्ली के सिंहासन को सुरक्षित नहीं रख पाएंगी।

alokmehta@nationalduniya.com